सावित्री अग्रवाल और अन्य

बनाम

महाराष्ट्र राज्य और अन्य

(आपराधिक अपील सं. 1178- 1179/2009)

10 जुलाई, 2009

[डी. के. जैन और आर. एम. लोढा, जे.जे.]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 438- अग्रिम जमानत- अपराध अंतर्गत धारा 498- ए, 304- बी/34 भा. द. सं. और धारा 3 और 4 दहेज निषेध अधिनियम का अपराध करने का आरोप- सत्र न्यायालय द्वारा अग्रिम जमानत की मंजूरी- उच्च न्यायालय द्वारा रद्द करना- स्थिरता- अभिनिर्धारित, स्थिरता टिकाऊ नहीं है। सत्र न्यायाधीश ने प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद एक तर्कपूर्ण आदेश पारित किया- उच्च न्यायालय ने गैर- जमानती मामले में पहली बार में जमानत को अस्वीकार करना और पहले से दी गई जमानत को रद्द करने के प्रासंगिक कारकों के भेद को नजरअंदाज कर दिया- पहले से दी गई जमानत आदेश को रद्द करने के लिए बहुत ठोस और अत्यधिक बलशाली परिस्थितियाँ आवश्यक हैं। अभियुक्त के खिलाफ कोई शिकायत नहीं की कि

उन्होंने अनुसंधान में सहयोग नहीं किया या उन्हें स्वीकृत अग्रिम जमानत का दुरुपयोग किया गया- अग्रिम जमानत देने का सत्र न्यायाधीश का आदेश पुनर्स्थापित किया।

अपीलकर्ताओं पर अपराध अंतर्गत धारा 498- ए, 304- बी/34 भा. द. सं. और धारा 3 और 4 दहेज निषेध अधिनियम का अपराध करने का आरोप लगाया गया था। उन्होंने अग्रिम जमानत के लिए आवेदन किया। सत्र न्यायाधीश ने अंतर्गत धारा 438 सी.आर.पी.सी. की मंजूरी दी। कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज किये गये मृत्युकालिक कथन पर विचार किया जहाँ मृतक ने अपीलार्थियों के खिलाफ किसी भी दहेज की मांग करने या किसी अन्य उद्देश्य के लिए उसे प्रताड़ित करने का कोई आरोप नहीं लगाया था। प्रत्यर्थी- राज्य और शिकायतकर्ता ने अपीलार्थी की स्वीकृत अग्रिम जमानत को रद्द करने का आवेदन दायर किया। उच्च न्यायालय ने भी इसकी अनुमति दी। अतः यह वर्तमान अपीलें।

अपीलों का निपटारा करते हुए, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया।

1.1 तात्कालिक मामले में, उच्च न्यायालय ने अग्रिम जमानत देने वाले अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को उलटने में गंभीर त्रुटि की। सत्र न्यायाधीश ने प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद एक तर्कपूर्ण आदेश पारित किया, विशेष रूप से, दो मृत्युकालिक कथन, पहला जो मृतक के माता- पिता की उपस्थिति में दर्ज किया गया

और महिला प्रकोष्ठ के सदस्यों के बयान जिसने मामले को निपटाया था तब 15 जुलाई, 2006 में मृतक आत्महत्या करने के इरादे के साथ घर से निकली थी और इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि अग्रिम जमानत स्वीकार करने में न्यायिक विवेकाधिकार विकृत या गलत था, उच्च न्यायालय का हस्तक्षेप अपेक्षित था। सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश इस हद तक कारणों से समर्थन किया गया था जो जमानत देने के मामले में न्यायिक विवेक के प्रयोग के लिए आवश्यक था। यह सच हो सकता है कि आक्षेपित आदेश की कुछ परिस्थितियों पर, उच्च न्यायालय ने ध्यान दिया, अर्थात, पंचनामा में मौके पर लालटेन का कोई संदर्भ नहीं है या 4 बजे लालटेन को साफ करने की आवश्यकता और/या घर में इन्वर्टर की उपलब्धता आदि, सत्र न्यायाधीश को एक अलग दृष्टिकोण लेने के लिए राजी किया जा सकता था लेकिन यह नहीं कहा जा सकता है कि जमानत देने में सत्र न्यायाधीश के पास जिन कारकों का वजन था, वे उनके सामने के मुद्दे के लिए अप्रासंगिक थे, विकृत आदेश रूप में प्रस्तुत करते हुए। इसके अलावा, केवल इसलिए कि उच्च न्यायालय का उसी सामग्री पर एक अलग दृष्टिकोण था जिसे सत्र न्यायाधीश द्वारा आदेश पारित करने के लिए ध्यान में लिया गया उस विकृत आदेश को लेबल करने के लिए एक वैध आधार नहीं था। [पैरा 20] [993- ए- एफ]

1.2 उच्च न्यायालय ने गैर- जमानती मामले में पहली बार में जमानत को अस्वीकार करना और पहले से दी गई जमानत को रद्द करने

के प्रासंगिक कारकों के भेद को नजरअंदाज कर दिया- पहले से दी गई जमानत आदेश को रद्द करने के लिए बहुत ठोस और अत्यधिक बलशाली परिस्थितियाँ आवश्यक हैं जो इस मामले में विद्यमान नहीं है। कुछ भीं ध्यान में नहीं लाया गया था जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता कि अपीलकर्ताओं ने अनुसंधान में सहयोग नहीं किया है या उन्हें स्वीकृत अग्रिम जमानत का किसी भी तरह से दुरुपयोग किया गया है। वास्तविक रूप से, राज्य का काउंसिल ने प्रतिनिधित्व किया तथा कहा कि अपीलार्थियों को अग्रिम जमानत स्वीकृत करने के बाद मामले में अनुसंधान नहीं किया गया। [पैरा 21] [993- एफ- एच; 994- ए- सी]

1.3. अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा अपीलार्थियों को दी गई अग्रिम जमानत का आक्षेपित आदेश को अपास्त किया गया, आदेश कायम नहीं रखा जा सकता और आपस्त किया गया। अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा अपीलार्थियों को पारित अंतरिम अग्रिम जमानत का आदेश पुष्ट करते हुए बहाल किया जाता है। [पैरा 22] [994- डी]

श्री गुरबख्श सिंह सिबिया और अन्य बनाम पंजाब राज्य 1980 (2) इसके बाद एस. सी. सी. 565 से लिया गया।

पूरन बनाम रामबिलास अन्य 2001 (6) एस. सी. सी. 338; बालचंद जैन बनाम एम. पी. राज्य 1976 (4) एस. सी. सी. 572; गुरबख्श सिंह सिबिया बनाम पंजाब राज्य ए. आई. आर. 1978 पी. एंड

एच. 1; आद्री धरण दास बनाम डब्ल्यू. बी. राज्य 2005 (4) एस. सी. सी. 303; दोलत राम और अन्य बनाम हरियाणा राज्य 1995 (1) एस. सी. सी. 349, संदर्भित।

मामला कानून संदर्भः

2001(6) एस. सी. सी. 338 संदर्भित किया गया पैरा 8

1976(4) एस. सी. सी. 572 संदर्भित किया गया पैरा 10ए. आई. आर. 1978 पी एंड एच 1 संदर्भित किया गया पैरा 15

1980 (2) एस. सी. सी. 565 संदर्भित किया गया पैरा 16,17 और 20

2005 (4) एससीसी 303 संदर्भित किया गया पैरा 18

1995 (1) एससीसी 349 संदर्भित किया गया पैरा 21

आपराधिक अपील न्यायनिर्णयः आपराधिक अपील नं. 1178-1179 /2009।

उच्च न्यायालय, बॉम्बे के नागपुर पीठ के आपराधिक आवेदन सं. 250/2008 और 2081/2008 में निर्णय और आदेश दिनांकित 02.07.2008 से।

अपीलार्थियों की ओर से उदय उमेश ललित, जेमिनी कसात, गगन सांघी और रामेश्वर प्रसाद गोयल।

उत्तरदाताओं के लिए शेखर नाफड़े, अरुण अग्रवाल, निखिल नय्यर, टी. वी. एस. रागवेंद्र श्रेयस, अंबुज अग्रवाल और रवींद्र केशवराव।

न्यायालय द्वारा निर्णय दिया गया।

माननीय न्यायाधिपति डी. के. जैन।

1. अनुमति दी गयी।

2. इन दोनों अपीलों में बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांकित 2 जुलाई, 2008 को, नागपुर पीठ, नागपुर में आपराधिक आवेदन सं. 250 और 2081/2008 के फैसले को चुनौती दी गई है और जिसके तहत उक्त राज्य और शिकायतकर्ता दायर दो आवेदनों को क्रमशः अनुमति दी गई है और सत्र न्यायाधीश द्वारा अपीलार्थियों को संरक्षण प्रदान किया गया, अमरावती के आदेश दिनांक 18 दिसंबर, 2007 के अनुसार दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 438 (संक्षेप में 'संहिता') के संदर्भ में वापस ले लिया। यहां अपीलकर्ता मृतक- लक्ष्मी के सास, ससुर, पति और ससुर का छोटा भाई हैं जिन पर धारा 498ए, 304- बी सपठित धारा 34 भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में 'आई. पी. सी.') और दहेज निषेध अधिनियम, 1961 की धारा 3 और 4 के तहत दंडनीय अपराध करने का आरोप है।

3. भौतिक तथ्य, जिनसे ये अपीलें दायर की जाती हैं, वे इस प्रकार हैः-

मृतक- लक्ष्मी ने अपीलार्थी नं. 3 से दिनांक 26 जनवरी, 2006 को शादी कर ली। उनके एक पुत्र का जन्म हुआ। 6 दिसंबर, 2007 को करीब 4.30 बजे अपीलार्थी नं. 2 (ससुर) द्वारा कहा गया कि उन्होंने लक्ष्मी को रोते हुए सुना था और जब वह घर की दूसरी मंजिल पर पहुंचे, उसने उसे जलते हुए देखा। उन्होंने आग बुझाने की कोशिश की। लक्ष्मी ने उसे बताया कि उसका बेटा बाथरूम में लेटा हुआ था। वह दौड़कर बाथरूम में पहुँचा और पाया कि बच्चा भी जल गया था। लक्ष्मी और उसके बच्चे को अस्पताल ले जाया गया। शाम करीब 6। 40 बजे, कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा उसके कथन दर्ज किये गये उसने कहा कि उसे और उसके बेटे को आग लग गई जब वह दीपक में मिट्टी का तेल डाल रही थी जो गलती से नीचे गिर गया; तेल उन पर गिर गया और दोनों जल गए। लगभग 10.55 बजे, नाबालिग बच्चे की मृत्यु हो गई। सूचना मिलने पर, लक्ष्मी के माता- पिता उसी रात लगभग 11.30 बजे अस्पताल पहुंचे। 7 दिसंबर, 2007 को लगभग 1.4 बजे लक्ष्मी का दूसरा बयान कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज किया गया था जिसमें उन्होंने फिर से दोहराया कि वह गलती से जल गई थीं।

4. 8 दिसंबर, 2007 को लक्ष्मी के पिता ने अपीलार्थीगण के खिलाफ पुलिस स्टेशन सिटी कोटवाली, अमरावती में एक शिकायत दर्ज कराई, अन्य बातों के साथ- साथ, यह आरोप लगाते हुए कि उसकी बेटी की शादी 26 जनवरी, 2006 के बाद, अपीलार्थी उसे 2 लाख रुपये दहेज में नहीं

मिलने के लिए तना दे रहे थे और 15 जुलाई, 2006 को, यातना के कारण उसने आत्महत्या करने के इरादे से वैवाहिक घर छोड़ दिया था लेकिन रिश्तेदारों के हस्तक्षेप के कारण, वह वापस अमरावती लौट आई। इस शिकायत पर पुलिस ने अपीलार्थियों के खिलाफ धारा 498 ए, सपठित धारा 34 भारतीय दंड संहिता, 1860 और धारा 3 और 4 दहेज निषेध अधिनियम, 1961 के अपराध के लिए प्राथमिकी दर्ज की।

5. 6 दिसंबर, 2007 को अपीलकर्ताओं ने अग्रिम जमानत के लिए सत्र न्यायाधीश, अमरावती के समक्ष आवेदन किया, 10 दिसंबर, 2007 के आदेश से, शुरू में उनके सुनवाई की अगली तारीख 17 दिसंबर, 2007 तक गिरफ्तारी से अंतरिम संरक्षण मंजूरी दी गई। 16 दिसंबर, 2007 को लक्ष्मी की मृत्यु हो गई और भा. द. सं. की धारा 304- बी अपीलकर्ताओं के खिलाफ जोडी गयी। 18 दिसंबर, 2007 को दोनों पक्षों को सुनने और उक्त पर विचार करने पर मृतक- लक्ष्मी, द्वारा की गई दो मृत्युकालिक कथन किये गये, शिकायतकर्ता और गवाहों के बयान और केस डायरी को देखने के बाद, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अपीलार्थियों को अग्रिम जमानत की पुष्टि की गई।

6. व्यथित, महाराष्ट्र राज्य और शिकायतकर्ता ने अपीलार्थियों को दी गई अग्रिम जमानत रद्द करने के लिए उच्च न्यायालय में याचिका दायर की। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, कि उच्च न्यायालय ने

आक्षेपित आदेश द्वारा अपीलार्थियों को दी गई अग्रिम जमानत को इस आधार पर रद्द कर दिया है कि सत्र न्यायाधीश कुछ निश्चित परिस्थितियों पर अपना मष्तिक का प्रयोग करने में विफल रहे थे अर्थात- पंचनामे में लालटेन और माचिस का उल्लेख नहीं होना। लालटेन की आवश्यकता और उसकी रोशनी दोपहर 4 बजे जब घर एक इन्वर्टर इन्वर्टर से सुसज्जित था; बहू एक साल के बच्चे के साथ ऐसा जोखिम भरा काम कर रही थी। विशेष रूप से जब परिवार में बड़े लोग मौजूद थे और घर में सब कुछ ठीक था, यहां मृतक के माता- पिता के लिए ससुराल वालों कों फंसाने का कोई अवसर नहीं था। अन्य बातों के साथ- साथ, साक्ष्य को देखते हुए कि, अपीलार्थी जो सीधे शामिल थे, जिन्हें नजरअंदाज कर दिया गया था, विकृत आदेश सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित करते हुए जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, उच्च न्यायालय ने उक्त आदेश को रद्द कर दिया है। उच्च न्यायालय ने यह भी उल्लेख किया कि जिन अपराधों की शिकायत की गई थी, वे गंभीर प्रकृति के थे, याचिकाकर्ता को अग्रिम जमानत देने का कोई आधार नहीं था। व्यथित होने के कारण, अपीलार्थी इन अपीलों में हमारे सामने हैं।

7. श्री उदय यू. ललित, अपीलार्थियों की तरफ से विद्वान वरिष्ठ वकील ने तर्क दिया कि उच्च न्यायालय मामले की तथ्यात्मक पृष्ठभूमि की विवेचना करने में विफल रहा है, विशेष रूप से यह तथ्य है कि कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज किये गये दोनों मृत्युकालिक कथन, जहाँ मृतक ने

अपीलार्थियों के खिलाफ किसी भी प्रकार के दहेज की मांग करने या किसी अन्य उद्देश्य के लिए उसे प्रताड़ित करने का कोई आरोप नहीं लगाया था।

इसका पुरजोर आग्रह किया गया था कि 7 दिसंबर, 2007 लगभग 1.40 बजे जो दूसरे मृत्युकालिक कथन दर्ज किए गये, वह मृतक के पिताजी की उपस्थिति में था और शायद उनके कहने पर, जिन्होंने स्वीकार किया था 6 दिसंबर, 2007 को दोपहर 11.30 पर अस्पताल पहुंचे, फिर भी मृतक ने अपीलार्थियों के खिलाफ कोई आरोप नहीं लगाया। याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने तर्क दिया कि अभियोजन द्वारा, सत्र न्यायाधीश द्वारा अग्रिम जमानत मंजूर किए जाने के लिए विचार हेतु उनके समक्ष प्रासंगिक सामग्री रखी गई अर्थात, मृतक के मृत्युकालिक कथन, अनुसंधान अधिकारी द्वारा दर्ज बयान और केस डायरी, अनुसंधान अधिकारी की किसी शिकायत के अभाव में दिनांक 10 दिसंबर, 2007 को स्वीकृत अंतरिम संरक्षण के बाद अपीलार्थियों द्वारा अनुसंधान में सहयोग नहीं किया गया, और उन्हें दी गई अग्रिम जमानत का दुरुपयोग किया था वहां उच्च न्यायालय के समक्ष कोई अन्य भारी परिस्थिति नहीं, सत्र न्यायाधीश द्वारा प्रयोग किए गए न्यायिक विवेकाधिकार के साथ हस्तक्षेप करना उचित और जमानत रद्द करना था।

8. इसके विपरीत, श्री शेखर नाफडे, विद्वान वरिष्ठ वकील, राज्य की ओर से पेश ने पुरजोर आग्रह किया कि उच्च न्यायालय द्वारा अग्रिम

जमानत के अपने आदेश को रद्द करने में जिन परिस्थितियों पर भरोसा किया गया था अपीलार्थी पर संदेह की सुई है और इसलिए, सत्य प्राप्त करने के लिए अपीलार्थियों से अभिरक्षा में पूछताछ आवश्यक होगी। उजागर तथ्य यह है कि मृतक ने अपना वैवाहिक घर 15 जुलाई, 2006 को अपीलार्थियों की यातना के कारण आत्महत्या करने के इरादे से छोड़ दिया था और दोनों पक्षों के रिश्तेदारों द्वारा आश्वासन दिए जाने पर अपने वैवाहिक घर में वापस लौट आई थी कि उन्हें परेशान नहीं किया जाएगा, विचाराधीन घटना अपीलार्थियों के खिलाफ भा. द. सं. की धारा 304- बी के संदर्भ में उपधारणा करती है। शिकायतकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों का समर्थन करते हुए तर्क दिया कि सत्र न्यायाधीश द्वारा अग्रिम जमानत का आदेश अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री और साक्ष्य और अपराध की प्रकृति की उपेक्षा करके पारित किया गया, इस न्यायालय के निर्णय पूरन बनाम रामबिलास और अन्य, की रोशनी में उच्च न्यायालय ने जमानत आदेश रद्द करने को उचित ठहराया।

9. प्रतिद्वंद्वीयों के तर्क के गुणों की जांच करने से पहले, हम उस पृष्ठभूमि को फिर से आत्मसमर्पण करना उचित समझते हैं जिसमें धारा 438 संहिता में अंतःस्थापित की गई थी और व्यापक एक अनुप्रयोग के साथ उक्त प्रावधान के तहत व्यवहार करते समय मापदंडों को ध्यान में रखा जाना चाहिए क्योंकि मामले कानून की अधिकता के बावजूद विषय पर संविधान पीठ के निर्णय सहित श्री गुरबख्श सिंह सिबिया और अन्य।

बनाम पंजाब राज्य 2 उक्त प्रावधान की अवधारणा और दायरे के संबंध में कुछ संदेह अभी भी प्रबल प्रतीत होते हैं।

10. संहिता की धारा 438 उच्च न्यायालय और सत्र न्यायालय, को 'अग्रिम जमानत'देने की शक्ति प्रदान करती है यदि आवेदक के पास 'विश्वास करने का कारण'है कि उसे गैर जमानतीय अपराध करने के लिए गिरफ्तार किया जा सकता है। संहिता में 'अग्रिम जमानत' शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है। लेकिन जैसा कि बालचंद जैन बनाम एम. पी. 3 राज्य में देखा गया है, 'अग्रिम जमानत' का अर्थ है 'गिरफ्तारी की प्रत्याशा में जमानत'। 'अग्रिम जमानत' एक गलत नाम है क्योंकि ऐसा नहीं है कि वर्तमान में न्यायालय द्वारा अग्रिम जमानत गिरफ्तारी की प्रत्याशा में दी गई है। जब कोई सक्षम अदालत 'अग्रिम जमानत' देती है, तो वह एक आदेश देती है कि गिरफ्तारी की स्थिति में, एक व्यक्ति जमानत पर रिहा किया गया। जमानत पर रिहा होने का कोई सवाल ही नहीं है जब तक कि एक व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाता है और इसलिए, यह केवल गिरफ्तारी पर अग्रिम जमानत देने का आदेश लागू हो जाता है। अदालत ने आगे कहा कि 'अग्रिम जमानत' देने की शक्ति व्यवहार में कुछ असाधारण है और यह केवल असाधारण मामले जहां यह प्रतीत होता है कि कोई व्यक्ति गलत तरीके से फंसाया जा सकता है, या उसके खिलाफ एक तुच्छ मामला शुरू किया जा सकता है, या "यह मानने के लिए उचित आधार हैं कि अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के फरार होने या जमानत पर

रहते हुए अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग करने की संभावना नहीं है ताकि ऐसी शक्ति का प्रयोग करें। यह शक्ति प्रकृति में असामान्य होने के कारण, इसे केवल न्यायिक सेवा के उच्च स्तरों को सौंपा गया है, अर्थात सत्र न्यायालय तथा उच्च न्यायालय। अतः संहिता की धारा 438 की शक्तियों सीमित है।

11. ऐतिहासिक रूप से, दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 (पुरानी संहिता) में 1973 की वर्तमान संहिता की धारा 438 के अनुरूप विशिष्ट प्रावधान नहीं थे। पुराने कोड के तहत, विभिन्न उच्च अधिकारियों के बीच विचारों में गिरफ्तारी की प्रत्याशा में जमानत का आदेश देने के संबंध में तीखा अंतर था हालाँकि, विचार की प्रमुखता यह थी कि इसमें ऐसी शक्ति नहीं थी। भारत के विधि आयोग ने इस प्रश्न पर विचार किया और अपनी 41 वीं रिपोर्ट के माध्यम से, इस संबंध में एक स्पष्ट प्रावधान लागू करने की सिफारिश की।

12. केंद्र सरकार द्वारा विधि आयोग के सुझाव को स्वीकार कर लिया गया और दंड प्रक्रिया संहिता, 1970 के मसौदा विधेयक में, खंड 447 ने एक अभिव्यक्त शक्ति उच्च न्यायालय और सत्र न्यायालय को अग्रिम जमानत देने की शक्ति प्रदान की।

13. विधि आयोग ने इस मुद्दे पर फिर से विचार किया और कहा गया;

"विधेयक में अग्रिम जमानत का प्रावधान किया गया है यह परिस्थिति के अनुसार पूर्व के आयोग की सिफारिश पर हम सहमत है कि यह उपयोगी जुडाव होगा, इसलिए हम यहां यह जोडना चाहते है कि यह शक्ति बहुत आपवादिक परिस्थितियों में उपयोग मे लायी जावे।

हमारा आगे यह विचार है कि यह सुनिश्चित करने के लिए कि किसी परिस्थिति में पक्षकार द्वारा प्रावधान का दुरुपयोग नहीं किया जाये, अंतिम आदेश केवल लोक अभियोजक को नोटिस देने के बाद ही होना चाहिए। प्रारंभिक क्रम पर केवल एक अंतरिम आदेश होना चाहिए। इसके अलावा, संबंधित खंड में यह स्पष्ट केवल निर्देश जारी किया जा सकता है और यदि न्यायालय संतुष्ट है कि न्याय के हित में अभिलिखित किए जाने वाले कारणों के लिए, ऐसा निर्देश आवश्यक है।

पुलिस अधीक्षक को तुरंत उस सूचना को प्रदान करना भी सुविधाजनक होगा अंतरिम आदेश के साथ- साथ अंतिम आदेश भी दिए जाएंगे। "

[भारत का विधि आयोग, अड़तालीसवीं रिपोर्ट, पैरा 31]

14. विधि आयोग की रिपोर्टों को ध्यान में रखते हुए, संहिता में धारा 438 जोड़ी गई थी। धारा 438 की उप- धारा (1) यह अधिनियमित करती है कि जब किसी व्यक्ति के पास विश्वास करने का कारण हो कि उसे अपराध करने के आरोप में गिरफ्तार किया जा सकता है जो एक गैर-जमानती अपराध, वह उच्च न्यायालय में आवेदन कर सकता है या सत्र न्यायालय इस निर्देश के लिए कि उसकी गिरफ्तारी की स्थिति में उसे जमानत पर रिहा किया जाएगा, और न्यायालय, यदि वह उचित समझे, निर्देश दें कि इस तरह की गिरफ्तारी की स्थिति में उसे जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा। उप- धारा (2) उसमें उल्लिखित शर्तों को लागू करने के लिए उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय को अधिकार देती है। उप- खंड (3) यह बताता है कि यदि ऐसे व्यक्ति को इसके बाद ऐसे पुलिस थाने के प्रभारी अधिकारी द्वारा बिना वारंट के उस पर लगे आरोप में गिरफ्तार किया जाता है तो उसे जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा।

15. पंजाब उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के गुरबख्श सिंह सिबिया (सुपरा) में, संविधान न्यायपीठ को पंजाब उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा निर्धारित सिद्धांतों की शुद्धता या अन्यथा पर विचार करने के लिए कहा गया था। गुरबख्श सिंह सिबिया बनाम पंजाब राज्य में हरियाणा में उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने संबंधित कानून का सारांश दिया तथा संहिता की धारा 438 में परिलक्षित अग्रिम जमानत देने के लिए

विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग करते समय और आठ सिद्धांत निर्धारित किए जिन्हें ध्यान में रखा जाना था।

16. संविधान पीठ ने सैद्धांतिक रूप से उच्च न्यायालय द्वारा संहिता की धारा 438 के तहत प्रदत्त शक्तियों पर लगाये गये प्रतिबंधों से असहमति जताते हुए यह देखा गया कि विधानमंडल ने अग्रिम जमानत देने के लिए उच्च न्यायालय और सत्र न्यायालय को व्यापक विवेकाधिकार प्रदान किया है क्योंकि सबसे पहले यह महसूस किया गया कि इसकी गणना करना मुश्किल होगा कि किन परिस्थितियों में अग्रिम जमानत होनी चाहिए या नहीं होनी चाहिए और दूसरा, क्योंकि इरादा उच्च न्यायालयों में कुछ हद तक स्वतंत्र हाथ से अग्रिम जमानत की प्रकृति के मामलों में राहत देने की अनुमति का था। अदालत ने कहा;

> "जब हर मामले में तथ्य अलग- अलग होते है तो सार्वभौमिक अनुप्रयोग के सूत्रों की खोज करने का प्रयास विवेकाधिकार प्रदान करने का उद्देश्य को ही विफल कर देता है इसलिए तथ्यों के आधार पर कोई दो मामले एक जैसे नहीं होते हैं, यदि स्वतंत्र खेल की अनुमति देनी होगी। सत्र न्यायालय और उच्च न्यायालय को अग्रिम जमानत देने का व्यापक विवेकाधिकार सौंपने में कोई जोखिम नहीं है, क्योंकि, सबसे पहले, ये अनुभवी व्यक्तियों द्वारा संचालित

उच्च न्यायालय हैं और दूसरा, उनके आदेश अंतिम नहीं हैं, बल्कि अपीलीय या पुनरीक्षण जांच के लिए खुले हैं और सबसे बढ़कर क्योंकि, न्यायालयों द्वारा विवेक का प्रयोग हमेशा न्यायिक रूप से किया जाना चाहिए ना कि सनक, सनक की कल्पना के अनुसार। दूसरी तरफ, उन मामलों की श्रेणियों को बंद करने में जोखिम है जिनमें अग्रिम जमानत की अनुमति दी जा सकती है क्योंकि जीवन अप्रत्याशित संभावनाओं को पैदा करता है और नई चुनौतियों को पेश करता है। न्यायिक विवेकाधिकार को इतना स्वतंत्र होना चाहिए कि वह इन संभावनाओं को अपनी प्रगति में ले सके और इन चुनौतियों का सामना कर सके। "

17. न्यायालय ने महसूस किया कि विधानमंडल द्वारा आपराधिक न्याय प्रदान करने की कार्यप्रणाली में उच्च स्तर पर व्यापक विवेकाधीन शक्ति प्रदान की गई है जमानत देने या नहीं देने का प्रश्न सार्वभौमिक अनुप्रयोग के लिए सीधे जैकेट नियमों के रूप में नहीं रखा जा सकता है, इसका जवाब विभिन्न परिस्थितियों पर निर्भर करता है, जिसका संचयी प्रभाव न्यायिक निर्णय में शामिल होना चाहिए। एक ऐसी परिस्थिति जो किसी दिए गए मामले में निर्णायक हो, किसी अन्य मामले में इसका कोई महत्व हो भी सकता है और नहीं भी। धारा के दायरे पर अनावश्यक प्रतिबंध लगाने के प्रति आगाह करते हुए क्योंकि उनकी राय में

उदारतापूर्वक बाधाओं और शर्तों को शामिल किया गया था जो धारा 438 में नहीं पायी गयी थी। जो प्रावधान संवैधानिक रूप से कमजोर है, क्योंकि संविधान का अनुच्छेद 21 व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार का प्रावधान करता है अनुचित प्रतिबंधों के अनुपालन पर निर्भर नहीं रहा जा सकता, संविधानिक पीठ ने निम्नलिखित दिशा- निर्देश दिए, जिन्हें न्यायालयों को अग्रिम जमानत के आवेदन को निस्तारित करते समय ध्यान में रखना आवश्यक है, जबकि

(1) यद्यपि संहिता की धारा 438 के अधीन प्रदत्त शक्ति को एक असाधारण रूप में वर्णित किया जा सकता है लेकिन यह निष्कर्ष उचित नहीं है, कि इस शक्ति का प्रयोग केवल असाधारण परिस्थिति में किया जाना चाहिए क्योंकि यह एक असाधारण स्थिति है। फिर भी, इस धारा के तहत प्रदत्त विवेकाधिकार का उपयोग उचित सावधानी के साथ किया जाना चाहिए और परिस्थितियों के आधार पर सावधानी अपने अभ्यास को उचित ठहराती है।

(2) धारा 438 की उप- धारा (1) के तहत प्रदत्त शक्ति के प्रयोग से पहले, न्यायालय हो संतुष्ट होना चाहिए कि प्रावधान को लागू करने वाले आवेदक के पास यह विश्वास करने का कारण हो कि उसे गैर जमानतीय अपराध के लिए गिरफ्तार किया जा सकता है और यह विश्वास उचित आधार पर स्थापित किया जाना चाहिए। केवल "डर" नहीं विश्वास होना

चाहिए जिस कारण से आवेदक को यह दिखाना पर्याप्त नहीं है कि उसे किसी प्रकार की अस्पष्ट आशंका है कि कोई उसके विरुद्ध आरोप लगाने जा रहा है जिसके अनुसरण में उसे गिरफ्तार किया जा सकता है। आधार जिन पर आवेदक का विश्वास है कि उसे गैर- जमानती अपराध के लिए गिरफ्तार किया जा सकता है, न्यायालय द्वारा निष्पक्ष रूप से जाँच किए जाने में सक्षम होना चाहिए। आवेदक द्वारा विशिष्ट घटना और तथ्यों का खुलासा किया जाना चाहिए ताकि न्यायालय उसके विश्वास की तर्कसंगतता का न्याय करने में सक्षम बनाया जा सके, जिसका अस्तित्व धारा द्वारा प्रदत्त शक्ति के प्रयोग की अनिवार्य शर्त है।

(3) बालचंद जैन के मामले में की गई टिप्पणियाँ (सुपरा), धारा 438 द्वारा प्रदत्त शक्ति की प्रकृति के बारे में और इस प्रश्न के संबंध में कि क्या धारा 437 में उल्लिखित शर्तें धारा 438 में पढ़ने के लिए बिन्दु पर निर्णायक है। धारा 438 को इस रूप में नहीं माना जा सकता है। धारा 438 में पढ़ने के लिए वारंट नहीं है कि संहिता की धारा 437 (1) के तहत कौन सी जमानत दी जा सकती है यह शर्त जिसके अधीन जमानत और इसलिए, आपराधिक न्यास भंग के अपराध के लिए अग्रिम जमानत से इंकार नहीं किया जा सकता कि सजा आजीवन कारावास है। परिस्थितियाँ विस्तृत रूप से ऐसे मामलों में भी जमानत देने को उचित ठहरा सकती है न्यायालय किसी मामले में स्वतंत्र रूप से अग्रिम जमानत देने से इंकार कर सकता है जहां उचित सामग्री इंकार के लिए विद्यमान है।

(4) जमानत का कोई व्यापक आदेश पारित नहीं किया जाना चाहिए और अग्रिम जमानत देने वाली अदालत को ध्यान रखना चाहिए अपराध या अपराधों को निर्दिष्ट करने के संबंध में केवल वही आदेश प्रभावी होगा। संहिता की धारा 438 (1) के तहत राहत देते हुए, उचित शर्तों को अंतर्गत धारा 438 (2) के तहत लगाया जा सकता है ताकि निर्बाध जांच सुनिश्चित की जा सके। ऐसी ही एक स्थिति यह भी हो सकती है कि साक्ष्य अधिनियम, की धारा 27 के तहत पुलिस द्वारा संभावित खोज का मामला बनाने की स्थिति में जमानत पर रिहा किया गया व्यक्ति उत्तरदायी होगा बरामदगी को सुविधाजनक बनाने के लिए पुलिस हिरासत में लिया जाए। अन्यथा, ऐसा आदेश एक अराजकता का चार्टर बन सकता है और उन अपराधों की त्वरित जांच को दबाने के लिए एक हथियार जो नहीं कर सकते थे संभवतः भविष्यवाणी की जा सकती है जब आदेश पास हो गया था।

(5) प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफ. आई. आर.) दाखिल करना धारा 438 के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए पूर्ववर्ती स्थिति नहीं है। उचित विश्वास के आधार पर संभावित गिरफ्तारी की संभावना को दिखाया जा सकता है, भले ही अभी तक कोई एफ. आई. आर. दर्ज नहीं की गई हो।

(6) अग्रिम जमानत स्वीकृत की जा सकती है यद्यपि एफ. आई. आर. दर्ज हो गयी है परन्तु आवेदक को गिरफ्तार नहीं किया गया है।

(7) धारा 438 के प्रावधानों को लागू नहीं किया जा सकता है जब आवेदक को गिरफ्तार कर लिया गया। गिरफ्तार होने के बाद, यदि वह किसी अपराध या अपराधों जिनके लिए वह गिरफ्तार किया गया, संहिता की धारा 437 या धारा 439 के तहत उपचार मांग सकता है।

(8) अग्रिम जमानत का आदेश संहिता की धारा 438 के तहत पारित किया जा सकता है लोक अभियोजक को नोटिस दिए बिना लेकिन नोटिस लोक अभियोजक या सरकारी वकील को जारी किया जाना चाहिए तथा पक्षकारों के अभिवचनों के प्रकाश में जमानत के प्रश्न पर पुनः जांच करनी चाहिए। अंतरिम आदेश धारा की आवश्यकता को पूरा करना चाहिए और इस प्रक्रम पर आवेदक पर उचित शर्ते लगानी चाहिए।

(9) हालांकि यह आवश्यक नहीं है कि संहिता की धारा 438 (1) के तहत पारित आदेश का संचालन समय की सीमा में हो लेकिन न्यायालय एक सूक्ष्म अवधि के लिए आदेश के संचालन की सीमा कर सकता है, यदि ऐसा करने के कारण हैं यदि एफ. आई. आर. दर्ज करने के बाद संबंधित मामला आदेश की परिधि में आता हो। ऐसे मामलों में, आवेदक संहिता की धारा 437 या 439 के तहत जमानत का आदेश प्राप्त करने के लिए एक उचित सीमित अवधि के लिए निर्देशित किया जा सकता है।

18. इस समय यह ध्यान रखना उचित होगा कि अद्री धरण दास बनाम राज्य डब्ल्यू. बी. 5 के मामले में इस न्यायालय द्वारा यह विचार

व्यक्त किया कि संहिता की धारा 438 के तहत आवेदन के साथ व्यवहार करते समय न्यायालय अंतरिम आदेश गिरफ्तारी को रोकने का पारित नहीं कर सकता है क्योंकि यह जाँच में हस्तक्षेप के बराबर होगा, सिबिया के मामले में संविधान पीठ की राय (सुपरा) मत के अनुरूप प्रतीत नहीं होती है। इसी तरह, यह मत कि धारा 438 के तहत शक्ति का केवल असाधारण मामलों में प्रयोग किया जाना चाहिए जो बालचंद के मामले में निर्णय (सुपरा), के निर्णय पर आधारित है, जिसे पूर्ण रूप से संविधान पीठ द्वारा पूरी तरह से अनुमोदित नहीं किया गया है। इस संबंध में, संविधान पीठ ने इस प्रकार कहाः

> "बालचंद जैन में यह टिप्पणियाँ की गयी कि धारा 438 द्वारा प्रदत्त शक्ति की प्रकृति के संबंध में और इस प्रश्न के संबंध में कि क्या धारा 437 में उल्लिखित शर्तों को धारा 438 में पढा जाना चाहिए, इसलिए उन बिन्दु को निष्कर्ष के रूप में नहीं माना जा सकता जो सीधे हमारे विचार में उठते है। हम सम्मान के साथ सहमत हैं कि उपरोक्त संकेत के अनुसार धारा 438 के तहत प्रदत्त शक्तियों असाधारण तथ्य है इसे धारा 437 और 439 के द्वारा प्रदत्त शक्ति की तरह सामान्य रूप से नहीं लिया जाता है। हम इस बात से भी सहमत हैं कि अग्रिम जमानत की शक्ति का उपयोग उचित सावधानी और आंकलन के साथ किया जाना चाहिए

लेकिन उससे परे, बालचंद जैन में की गई टिप्पणियों से सहमत होना संभव नहीं हैं कि एक पूरी तरह से अलग बिंदु पर पूरी तरह से अलग संदर्भ। "

(जोर दिया गया)

19. यह उल्लेख करना भी कुछ महत्वपूर्ण होगा कि दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 2005 द्वारा धारा 438 में संशोधन किया गया है। सिबिया मामला (सुपरा) में निर्धारित मापदंडों के अनुरूप संशोधित धारा कम या ज्यादा है। हालांकि, संशोधित प्रावधान अभी तक लागू नहीं किया गया है।

20. उपरोक्त मापदंडों की कसौटी पर विचार करने के बाद हमारी राय में उच्च न्यायालय ने अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, अमरावती द्वारा अपीलार्थियों को स्वीकृत अग्रिम जमानत के आदेश को उलटने में गंभीर गलती की है। सत्र न्यायाधीश ने प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद एक तर्कपूर्ण आदेश पारित किया, विशेष रूप से, दो मृत्युकालिक कथन, पहला जो मृतक के माता- पिता की उपस्थिति में दर्ज किया गया और महिला प्रकोष्ठ के सदस्यों के बयान जिसने मामले को निपटाया था जब 15 जुलाई, 2006 में मृतक आत्महत्या करने के इरादे के साथ घर से निकली थी और इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि अग्रिम जमानत स्वीकार करने में न्यायिक विवेकाधिकार विकृत या गलत

था, उच्च न्यायालय का हस्तक्षेप अपेक्षित था। सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश इस हद तक कारणों से समर्थन किया गया था जो जमानत देने के मामले में न्यायिक विवेक के प्रयोग के लिए आवश्यक था। यह सच हो सकता है कि आक्षेपित आदेश की कुछ परिस्थितियों पर, उच्च न्यायालय ने ध्यान दिया, अर्थात, पंचनामा में मौके पर लालटेन का कोई संदर्भ नहीं है या 4 बजे लालटेन को साफ करने की आवश्यकता और/या घर में इन्वर्टर की उपलब्धता आदि, सत्र न्यायाधीश को एक अलग दृष्टिकोण लेने के लिए राजी किया जा सकता था लेकिन यह नहीं कहा जा सकता है कि जमानत देने में सत्र न्यायाधीश के पास जिन कारकों का वजन था, वे उनके सामने के मुद्दे के लिए अप्रासंगिक थे, विकृत आदेश रूप में प्रस्तुत करते हुए। इसके अलावा, केवल इसलिए कि उच्च न्यायालय का उसी सामग्री पर एक अलग दृष्टिकोण था जिसे सत्र न्यायाधीश द्वारा आदेश पारित करने के लिए ध्यान में लिया गया उस विकृत आदेश को लेबल करने के लिए एक वैध आधार नहीं था।

21. हमें यह भी प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने गैर- जमानती मामले में पहली बार में जमानत को अस्वीकार करना और पहले से दी गई जमानत को रद्द करने के प्रासंगिक कारकों के भेद को नजरअंदाज कर दिया। दोलत राम और अन्य बनाम हरियाणा राज्य ने इसी तरह की स्थिति से निपटने के दौरान उच्च न्यायालय द्वारा दहेज के मामले में सत्र न्यायालय द्वारा दी गई अग्रिम जमानत को रद्द कर दिया था, न्यायालय ने

यह माना कि गैर जमानतीय मामले में प्रारंभिक स्तर पर जमानत से इंकार करना और जमानत रद्द करने पर अलग- अलग आधार पर विचार या निपटारा करना था। पहले से दी गई जमानत आदेश को रद्द करने के लिए बहुत ठोस और अत्यधिक बलशाली परिस्थितियाँ आवश्यक हैं, जो, हमारी राय में, इस मामले में विद्यमान नहीं है। कुछ भीं ध्यान में नहीं लाया गया था जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता कि अपीलकर्ताओं ने अनुसंधान में सहयोग नहीं किया है या उन्हें स्वीकृत अग्रिम जमानत का किसी भी तरह से दुरुपयोग किया गया है। वास्तविक रूप से, श्री शेखर नाफडे, विद्वान वरिष्ठ वकील, ने राज्य का प्रतिनिधित्व किया तथा कहा कि अपीलार्थियों को अग्रिम जमानत स्वीकृत करने के बाद मामले में अनुसंधान नहीं किया गया।

22. पूर्वगामी कारणों से, हमारे निर्णय में, विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा अपीलार्थीयों को दी गई अग्रिम जमानत के आक्षेपित आदेश को यथावत नहीं रखा जा सकता विवादित आदेश, आदेश निरस्त किया जाता है। तदनुसार, अपीलों की अनुमत की जाती है; आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है और 18 दिसंबर, 2007 को अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित अपीलार्थियों को अंतरिम अग्रिम जमानत के आदेश पुष्टि की जाती है, बहाल किया जाता है। यह कहे बिना नहीं रहा जा सकता कि उच्च न्यायालय या हमारे द्वारा ऊपर कही गई किसी भी बात को

मामले के गुण- दोष पर किसी भी राय की अभिव्यक्ति के रूप में नहीं माना जाएगा।

23. तदनुसार दोनों अपीलों का निपटारा किया जाता है।

अपीलों का निपटारा किया गया।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**'की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी रेखा तिवारी (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण। यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।